किशोर और जासूसी उपन्यास

किशोर किशोरी अर्थात् कल के युवक और युवती जासूसी उपन्यास पढ़ें या न पढ़ें, यह प्रश्न नहीं उठाया जाना चाहिए था। इसलिए कि कहीं भी लोकप्रियता की दृष्टि से यह प्रश्न कई नम्बरों के बाद आता है। पहले नम्बर पर आते हैं दैनिक समाचार पत्र। जिनमें कहीं डाका पड़ा हो तो डाके के भी समाचार होते हैं, कहीं कुछ और हुआ हो तो वह भी समाचार होंगे। साड़ियों के विज्ञापन भी होंगे और साड़ियों के विज्ञापन आजकल कुछ इस प्रकार के होते हैं–अपहृता साड़ी, अपराजिता साड़ी और इसी ढंग के उन विज्ञापनों में चित्र भी होते हैं। समाचार पत्रों के बाद नम्बर आता है रंग-बिरंगी भड़कीले रंग की पत्रिकाओं का। इन पत्रिकाओं में राजनीति की जरुरत के अनुसार हर मृत्यु पर यह सन्देह प्रकट किया जाता है कि यह वास्तव में हत्या थी। अकविता, अकहानी, अलेखों की भरमार के साथ पश्चिम की रंगीनी खूब होती हैं, स्वस्थ चित्र और अस्वस्थ लेखन और साथ ही साप्ताहिक भविष्य। दुनिया भर में घटने वाली अशोभनीय घटनाओं का विवरण, रंगीनी के पारदर्शी चित्र, राजनैतिक सन्निपात का प्रलाप और बहुत हद तक बेहूदा विज्ञापन। जब अभी तक यह विचार नहीं

किया गया कि किशोर ऐसे पत्र पत्रिकाएँ पढ़ें या नहीं —तब जासूसी उपन्यासों का एकदम पहले नम्बर कैसे आ गया?

खैर छोड़िए। जब सवाल सामने आ ही गया है तो उस पर विचार कर ही लिया जाए।

हिन्दी के जासूसी उपन्यास जिन्हें मित्रगण हव्वा बनाकर पेश कर रहे हैं वास्तव में हैं क्या? सक्षेप में कहें तो जासूसी उपन्यास का कथानक इस प्रकार होता है—अपराध, अपराधी की खोज, और अपराधी पर जासूसी की विजय। इसमें गलत क्या है?

जीवन के हर क्षेत्र की भाँति हिन्दी का जासूसी उपन्यास भी प्रारम्भिक रूप में यूरोप से प्रभावित रहा है। परन्तु अच्छी बात यह है कि भारतीय पाठक ने न तो यूरोप का अपराध वैचित्र्य स्वीकार किया है और न अपराधी की खोज का उबा देने वाला बारीक ढ़ग। भारतीय पाठक को केवल शौक के लिए हत्या कर देने वाला अपराधी पसन्द नहीं आता। इसके विपरीत ब्लैक मार्केटियर नकली दवा निर्माता, अथवा कलात्मक मूर्तियों के चोर को वह अपराधी के रूप में सहज ही स्वीकार कर लेता है। उबा देने वाली और बाल की खाल निकाल कर दिखाने वाली खोज के मुकाबले भारतीय जासूस और अपराधी की खुले मैदान में टक्कर को ज्यादह पसन्द करता है। अतएव हिन्दी जासूसी उपन्यासों में अथवा सफल जासूसी उपन्यासों में हल्के हास्य के पुट और साहसिक कारनामे मूल जासूसी उपन्यासों से कुछ अधिक ही मिलेंगे।

किशोर आयु ऐसी होती है जब मस्तिष्क जिज्ञासु होता है और अधिक से अधिक देखने और जानने की इच्छा होती है, इस आयु में जासूसी उपन्यास कमोबेश साहस का संचार करते हैं,

बुद्धि को शातिर जैसी तेजी प्रदान करते हैं और मैं समझता हूँ यह अच्छा है, उपयोगी है।

परन्तु सभी कुछ अच्छा है, सभी कुछ उपयोगी है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ। जब बात उठी है तो मैं कुछ बातें साफ कर देना चाहता हूँ।

इस दशक में हिन्दी जासूसी उपन्यास इस हद तक लोकप्रिय हुए है कि कथित साहित्यकारों को जासूसी उपन्यासों के लेखकों से स्वाभाविक ईर्ष्या होने लगी है, नोट करने वाली बात यह है कि जासूसी उपन्यासों और उपन्यासकारों को यह लोकप्रियता न पूँजीवादी तँत्र प्रेस ने दी है, न सरकारी तँत्र रेडियो ने। प्रकाशक पब्लिसिटी बजट से भी यह सँभव नहीं हुआ है। यह सँभव हुआ है जासूसी उपन्यासों के लेखकों के परिश्रम से, और उस परिश्रम को उत्तम मनोरंजन के लिए स्वीकार करने वाले पाठक वर्ग के सौजन्य से, और बहुत लोगों द्वारा पुस्तकों को किराए पर चलाने के धंधे को अपना लेने से।

किशोर और किशोरी जासूसी उपन्यासों के पाठक रहे हैं और रहेंगे। मैं जानता हूँ, फिर इसे—इस समस्या को वर्जित फल कह कर, अनजान बनकर उठाने से किसी और को नहीं केवल अपने आपको धोखा देना है।

इसीलिए मुख्य बात यह है कि किशोर और किशोरी जासूसी उपन्यास पढ़ते है और उपन्यास उनके लिए सर्वांग रूप से उपयोगी हों ऐसा सोचा जाना चाहिए। उत्तरदायित्व पूर्ण लेखन की माँग उभरनी चाहिए।

यह सब इसलिए कहना जरुरी हो गया है कि जासूसी उपन्यास लेखन में तीन प्रकार के घुसपैठिए है, जिनके कारण जासूसी उपन्यास साहित्य बदनाम होता है।

१. कुछ लेखकों की सफलता से क्षुब्ध होकर प्रकाशक वर्ग

ने प्रेत लेखक नामों की रचना कर ली है। लेखक नामों की लिखावट रजिस्टर्ड करा ली है, और उस नाम के लिए गैर जिम्मेदार लेखकों के उपन्यास लिए जाते है और प्रचार के माध्यम से उन्हें बेच दिया जाता है।

२. कुछ लेखक लेखन में बुद्धि का उपयोग न करके अमरीकन फिल्मों और उपन्यासों के चर्बे मार्केट में धकेलते हैं। इन उपन्यासों के पाठक अगर यह कहें कि हिन्दी जासूसी उपन्यासों में कुछ नया नहीं है तो आश्चर्य क्या ?

३. नम्बर तीन बात उपरोक्त दोनों बातों से खतरनाक है। ऐसे भी लेखक बन्धु हैं जो सती वेश्या दोनों ही प्रकार के चरित्र जीते है। हार्ड बाउन्ड ट्रेड में वह असली नाम से हैं, इस आशा में कि प्रदेश सरकार के छोटे इनाम-नई दिल्ली की साहित्य एकादमी का मंझला इनाम और ज्ञानपीठ का लखटकिया इनाम कबाड़ सकेंगे। परन्तु छद्म नाम से वह पाकेट बुक्स के जासूसी उपन्यासो में घुस आते हैं और बड़ी मासूमी से कहते है—यह जिन्दा रहने के लिए है। यह नम्बर तीन के आदमी आप चाहेंगे तो आपके लिए जासूसी उपन्यास लिख देगें, तो आप चाहेंगे तो आपके लिए जासूसी उपन्यासों के विरुद्ध लेख या रेडियो टेलीविजन वार्ता भी तैयार कर देगें।

लेकिन इन सभी बातों को छोड़िये। इन सभी बातों के बावजूद आमतौर से जासूसी उपन्यासों में वैसा कुछ नहीं होता जो किशोर आयु के बच्चों के लिए हानिकारक हो—क्यों हो सकता है ? वैसे कारण मैंने आपको बताए ही हैं। घुसपैठिए हर मुल्क में मिलते हैं, हर धन्धे में मिलते हैं यह मजबूरी की बात है।

अंत में कुछ बातें मैं जोर देकर दोहराना चाहता हूँ। जासूसी उपन्यास लेखक साधारण मध्यमवर्गीय व्यक्ति होता है।

उसकी कल्पना की उड़ान उस सातवें आसमान तक नहीं पहुँच सकती जहाँ उच्च वर्ग के व्यक्ति उड़ते हैं, उन षड़यन्त्रों का शिखर वह नहीं पा सकता जो राजनीतिज्ञ और पत्रकार मिलकर करते है—क्या यह सब चीजें दैनिक समाचार पत्रों में छपने से रोकी जा सकती है या किशोरों को दैनिक और साप्ताहिक पत्र पढ़ने से रोका जा सकता है। अश्लीलता की बात भी कही जा सकती है और मेरा निवेदन है कि क्या समाचार पत्रों मे विज्ञापन रोके जा सकते है ? क्या उन लेखकों को टैस्ट बुकों से निकाला जा सकता है जिन्हें हिन्दी के मान्य आलोचक 'चोलीचीरहरण' के लेखक कहकर धिक्कार चुके हैं। सही बात यह है कि कोई प्रौढ़ लेखक, प्रौढ़ सम्पादक या प्रौढ़ आलोचक—किशोरों को जासूसी उपन्यास पढ़ने दिया जाए या नहीं यह बहस उठाकर वास्तव में अपना समय नष्ट करता है। नई पीढ़ी कभी यह नहीं सोचती कि पुरानी पीढ़ी उससे क्या चाहती है। नई पीढ़ी निर्णय ले चुकी है, और वह निर्णय हम सभी जानते हैं।

(पराग से)